मुरलीमनोहर श्रीवास्तव

सत्य जीतता है

सत्य जीतता है

(काव्य-संग्रह)

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

प्रकाशक

साहित्य वीथी

दिल्ली-32

(हिन्दी अकादमी के सहयोग से प्रकाशित)

© मुरली मनोहर श्रीवास्तव

प्रकाशक : साहित्य वीथी

27/111, विश्वास नगर,
शाहदरा दिल्ली -32
दूरभाष :2429079, 2055312

संस्करण : प्रथम 1999

मूल्य : रु. 80/-

मुद्रक :

SATYA JITATA HAI

POETRY BY

MURLI MANOHAR SRIVASTAVA

रोशनी की ओर इशारा करती कविताएं

सृजन ऊर्जा और व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष में अचानक लेखनी आती है और व्यक्तिगत जीवन का खून कर डालती है। यह खून जब पृष्ठों पर पड़ता है तो कविता की शक्ल अख्तियार करता है। जीवन के रण–मैदानों में व्यक्ति की निजता लहूलुहान, आहत और क्षत–विक्षत हो जाती है और जीतती है लेखनी, जो अपने–पराए के मोहग्रस्त संबन्धों से ऊपर उठकर निर्वैयक्तिक हो चुकी होती है। मुरली मनोहर श्रीवास्तव की कविताएं पढ़ने के बाद कविता के बारे में उनकी समझ को लेकर कुछ ऐसी–सी अवधारणा बनती है।

न्यूनाधिक रूप से यह बात हर 'जैनुइन' कवि की काव्य–प्रक्रिया पर लागू होती है। कविता संवेदनाओं की ईमानदारी ओर ज्ञान–निष्कर्षों की तथ्यात्मकता के साथ यदि नहीं आई तो कवि का आत्म स्वयं को धिक्कारने लगता है .... और यहीं से प्रारंभ हो जाता है एक आत्म–संघर्ष। इस संकलन की अधिकांश कविताओं में इस आत्म–संघर्ष का कहीं वर्णनात्मक, कहीं विश्लेषणात्मक और कहीं तत्काल अनुभव–प्रसूत लेखा जोखा है। इस आत्म–संघर्ष का फलक अत्यंत व्यापक है क्योंकि इसके मूल में जो दर्द है वह सीने में पलने वाला नहीं है। उसने मस्तिष्क से जन्म लिया है।

आज के मध्यवर्गीय मन का विश्लेषण करना बहुत कठिन है। पलांश में ही मस्तक पटल में आयोजित जीवन आर्ट गैलरी की तस्वीरें बदल जाती हैं। टंगी तस्वीरों का परस्पर संबन्ध भी कुछ उलझ–सा जाता है। कभी पुराने प्रेम में नई तस्वीर दिखती है, कभी नए फ्रेम में पुरानी तस्वीर। एक प्रच्छन्न सांस्कृतिक संकट निष्कर्ष–बिम्बों को स्थिरता प्रदान नहीं कर पाता। इस प्रकार के असंयमित सांस्कृतिक वैविध्य को प्रतिपल जीना और उसमें से अपने लिए प्रातिनिधिक अनुभूत सत्यों को निकाल पाना कवि के लिए एक दुष्कर कार्य हो जाता है। मस्तिष्क साइकिल के पहिए की तरह घूमता है, जिसमें तानें तो बहुत होती हैं पर घूमते समय दिखाई एक भी नहीं देती। गति की एकतानता का न होना ही आज के संघर्षरत मध्यवर्गीय मन की एक अपेक्षित पहचान बन चुका है।

अब सवाल ये है कि अंधकारग्रस्त मन को आलोकित सुमन कैसे

बनाया जाये। उसका एक ही रास्ता है कि अपना पक्ष तय कर लिया जाये कि हम दबने वाले की तरफ हैं या दबाने वाले की तरफ। मुक्तिबोध ने लिखा है– 'तय करो किस ओर हो तुम/सुनहले ऊर्ध्व आसन के दबाते पक्ष में/या अंधेरी निम्न कक्षा में तुम्हारा मन?/ तय करो किस ओर हो तुम।'

आप मुरली बाबू की कविताएं पढ़ेंगे तो पाएंगे कि उनका मन अंधेरी निम्न कक्षा के रहवासियों के साथ ज्यादा सुकून पाता है। उनके दुख–दर्दों के लिए संघर्ष का संकल्प लेता सा दिखाई देता है। वह अंधेरे के द्वीप में चिराग लेकर बढ़ता तो है, भले ही उस चिराग के मद्धम प्रकाश में वह धधक चुके कोयले की राख ही पाए। विसंगतियों के घटाटोप में विडम्बनाओं के कारुणिक दृश्य हैं, ये माना, पर जरूरी नहीं है उसमें उलझ कर रह जाना और ग्लानि में आत्महंता हो जाना। मुरली मनोहर की कविताएं कष्टों के कुहासे में आपको घुमाने के बाद, रोशनी के द्वीप की ओर इशारा करती हुई मिलेंगी। इन कविताओं को पढ़िए नहीं, इनसे मिलिए।

अशोक चक्रधर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली-110025

दो शब्द

'सत्य जीतता है जब भीड़ भरे चौराहे पर शंखनाद कर कोई हमारी सोई हुई अंतरात्मा को जगाता है ।'

नक्कार खाने में तूती की आवाज की तरह गुम हो चुकी अंतरात्मा की आवाज को वर्तमान परिस्थितियों में शंखनाद कर जगाना स्वयं में एक चुनौती पूर्ण कार्य है ।

किसी न किसी को तो चुनौती स्वीकारनी होगी, यह चुनौती कविता के अस्तित्व से भी जुड़ी हुई है । आज कविता हर जगह संघर्ष करती प्रतीत होती है । वर्तमान युग के पाठक कविता पढ़ना एक कष्टकर कार्य समझते हैं । उन्हें कविता के भीतर से कुछ मिल पाने की आशा बहुत कम होती है ।

ऐसा सामान्यतः कविता के फ्रेम वर्क बौद्धिक व भावनात्मक धरातल पर दुरुहता या कभी-कभी पाठक की रचना के साथ साम्यता के अभाव में होता है ।

इतना सब कुछ होने के बाद भी यह एक शाश्वत सत्य है कि कविता ही पाठक को आत्मबोध करा सकती है । सुर, ताल, रस, छंद, संगीत में कहीं भी रस का निर्बाध प्रवाह है तो वह कविता है । हमारे भीतर क्षण-प्रतिक्षण भावनाके प्रबल वेग के रूप में प्रवाहित होती निर्मल धारा से रचना कितना सशक्त रूप ले पृष्ठों पर उतर कर पाठक को किस सीमा तक उद्वेलित करती है, यह उस धारा का विचारणीय तथ्य है । इसी तथ्य में छुपा है सच्चे आत्म मंथन का सार । अर्थात् व्यक्ति स्वयं से कितना सत्य बोल रहा है । जितना हम अंतरात्मा से दूर हैं उतना ही स्वयं को छल रहे हैं । हम व्यक्ति, समाज या परिस्थिति से सच नहीं बोलते, बल्कि निरपेक्ष रूप व निःस्वार्थ भाव से जब सत्य का विश्लेषण करते हैं तब हम अपने आप से संवाद स्थापित कर रहे होते हैं । जितना प्रगाढ़ हमारा आत्म संवाद होगा उतनी ही प्रखर, तीव्र व ज्योतिर्मय अंतरात्मा की आवाज होगी ।

यह आवज वास्तव में सत्य की पुकार है जो प्रतिपल, भीतर के कोलाहल को चीर कर उपर आना चाहती है । हम निरंतर बस इसी आवाज का गला घोटने को तत्पर दिखाई देते हैं ।

किंतु यदि यह आवाज दबती तो शायद सृष्टि गतिमान न रह जाती । इस भौतिकवादी युग में हमें सत्य के जीतने की संभावना बहुत कम दिखाई देती है और इसके परिपेक्ष्य में अंतरात्मा की आवज क्षीण हो जाती है ।

जब किसी भी कारणवश सत्य के जीतने पर हमारा विश्वास बढ़ता है तो हम आशावादी हो जाते हैं । इसके विपरीत सत्य के हारने के भय ने पूरे समाज के भीतर निराशावाद के अंकुर बो दिये हैं । यह भय उसे निरंतर निराशावाद की ओर धकेल रहा है और व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक, नैतिक सुरक्षा की चाह में सत्य का मार्ग छोड़ बेतहाशा दौड़ रहा है । वह असत्य से छद्म सत्य की स्थापना करना चाहता है । इस भौतिकता की दौड़ में, कोई चीज बाधक है, तो वह है अंतरात्मा, इसीलिये अंतरात्मा को गिरवी रखने का चलन बढ़ता जा रहा है ।

'सत्य जीतता है' में प्रयास है इसी सोई हुई अंतरात्मा को हृदय के भीड़ भरे चौराहे पर शंखनाद कर जगाने का । इसी प्रयास में यह यात्रा जीवन के विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरती है । यह यात्रा बचपन से गुजरती है तो प्रणय को भी छूती है, मनुष्यता के दुःख का बंटवारा करती है, तो अमरत्व को चुनौती भी देती है । सागर के अंतस्तल को छूती है तो पंख लगा कल्पना के उड़ान भी भरती है, किंतु हर मोड़ पर अंतःकरण के सत्य से साक्षात्कार करने का प्रयास करती है ।

इस यात्रा में मेरी कल्पना (धर्मपत्नी) प्रेरणा स्रोत रही, वस्तुतः हर परिस्थिति में उसका सत्य पर अटल रहना ही मेरा सम्बल है ।

यह प्रयास तभी सार्थक होगा जब इस यात्रा में पाठक भी उसी तन्मयता से चल सकें जिस तन्मयता से रचना प्रक्रिया चली है ।

मुरली मनोहर श्रीवास्तव

अनुक्रमणिका

कविता

1.	सरस्वती वंदना	09
2.	प्रिय तुम न आये	10
3.	अमरत्व	11
4.	प्रथम प्रणय के साक्षी	12
5.	बचपन	14
6.	आवाज	16
7.	मासूमियत	18
8.	कुछ	20
9.	साँस	21
10.	दावा	22
11.	समर्पण	23
12.	मनुष्य	24
13.	परिहास	25
14.	अस्तित्व	26
15.	तलाक	27
16.	पागल प्रेमी	28
17.	पिंजरे के पंछी	29
18.	जीवन चक्र	30
19.	सत्य जीतता है	31
20.	आस	33
21.	शून्य	34
22.	चुनौती	35
23.	दर्द का बंटवारा	37
24.	गुलाम	39
25.	तुफान	40
26.	मैं अकेला	41
27.	गुनाहगार	42
28.	सभ्यता की चादर	43

29.	समझदार आदमी	44
30.	शोर	45
31.	उमंग	46
32.	सफलता	47
33.	संधि	48
34.	प्रतीक्षा	49
35.	मँहगाई	50
36.	अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	51
37.	प्रगति	52
38.	रचना और प्रकाशक	53
39.	मौत के आसपास हूँ मैं	54
40.	नदी बहती रही	56
41.	स्वतंत्रता	57
42.	स्मृति के तट	58
43.	शहर	60
44.	गाँव	61
45.	टूट	62
46.	हे प्रभु	63
47.	प्रगति की रेल	64
48.	नियति	65

ग़ज़ल

1.	उम्र कट जायेगी	66
2.	उम्र के खजाने में	67
3.	ख्वाबों में मचलता है	68
4.	तुम याद आये	69
5.	पत्थर भी पिघलता है	70
6.	ना खुदा न बन सके	71

सरस्वती वंदना

हे माँ,
वाणी में ओज दो,
निर्मल मन, निर्भय तन,
जन कल्याण युक्त,
मानव को सोच दो ।
वसुधा का मीत दो,
सागर सा गीत दो,
सरस धवल आँचल सा,
आत्म अनुराग दो ।
सूर्य सा तेज दो
चंद्र सी शीतलता,
बुद्ध सा ज्ञान और
भरत सा वैराग्य दो ।
मानव मति स्वच्छ करो,
गीत संगीत से,
पंछी–सा क्रंदन दो,
सरिता–सा राग दो ।
स्वार्थ में डूबी,
भारत की जनता को,
मोह से दूर कर,
थोड़ा सा त्याग दो ।

प्रिय तुम न आये

सावन की बूँद
आँगन में टपकी
मिट्टी की सोंधी गंध
मन अनुरागी भया
नैन टकटकी लगाए
ड्योढ़ी निहारते रहे
साँझ तो ढली ढली
रात भी गुजर गयी
साँकल न खटकी
न खटकी–न खटकी
बादरवा गरजे
बिजुरी भी चमकी
पपीहे की तान बस
कान में बसी रही
यौवन लरज गया
झूला तरस गया
नैनों का नीर सजन
सावन सा बरस गया ।

अमरत्व

वहाँ मैं नहीं हूँ
तुम भी नहीं हो प्रभु
आत्मा व परमात्मा से परे
वहाँ सत्य है
सत्य किसी का नहीं होता
सभी सत्य के होते हैं
और उस परम सत्य की
वास्तविक अनुभूति ही
अपरिवर्तनीय रूप से मृत्यु है
वह मृत्यु
जो तुम से मिलकर
अमरत्व प्राप्त करती है
अमरत्व की खोज
कोई भ्रम या छल है
सत्य,
भ्रम और छल में नहीं जीता
जीवन,
निर्विवाद रूप से सत्य है,
इसीलिए,
अमरत्व विहीन ।

प्रथम प्रणय के साक्षी

प्रथम प्रणय के साक्षी
मेरी शैया के पुष्पों
हो सके तो बताना
किस उपवन से
किन हाथों ने तुम्हें चुना है
मैं निश्चय ही
उन करों को चूमना चाहूँगा
देना चाहूँगा उपवन को
अंतिम बेला
मेरे प्रणय मंदिर की चौखट
बताना अपने वन का नाम
बिताना चाहूँगा वानप्रस्थ
तुम्हारी ही गोद में
हे रात्रि के द्वितीय प्रहर
क्या एकत्र कर सकोगे
ग्रह नक्षत्रों व समय की यही दशा
मेरे अवसान के समय भी
ऐ मेरी अंगुली पर गिनती के क्षणों
क्या प्रतीक्षा के अनन्त वेदनामय क्षणों का
प्रतिफल
इतने सीमित क्षण हैं
इन्हें साक्षी मान
समर्पित करता हूँ
अगणित जीवन
मेरे कक्ष के अंधकार
क्या तुम साक्षी हो
समय के ?
हे मेरी आत्मा में बसे प्रकाश पुंज
तुम साक्षी हो
मेरे अखंडित प्रथम प्रणय के

एकल सुर वाणी हृदय मस्तिष्क शरीर
और एकल परमात्मा
एकलता का राग
मेरी भावना के एकतारे पर
मेरे करों
कह दो कि आज के स्पर्श हेतु
प्रत्येक शिरा व धमनी को
भरा है तुमने
नये रक्त से
मेरे नेत्रों
क्या तुम्हें
आज ही मिली है
दृष्टि अवलोकन की
मेरी उमंगों
शून्य से उठ आज
ढूँढ़ी है अनन्तता तुमने
मेरे हदय
आज ही स्पंदित हुए हो तुम
करुणा
तू शामिल हो इस उद्वेग में
वेदना तू भी आ
तूने भी तो आज
चर्मोत्कर्ष तक जिया है स्वंय को
आनन्द तुम ठहरो इस क्षण
सदा के लिए
क्योंकि तुम इस क्षण के
सबसे बड़े साक्षी हो
मेरे प्रथम प्रणय के साक्षी
जब वियोग में
व्यथित हो पुकारूं
तब आना
अपनी स्मृतियों के
अवशेष चिन्ह रखने ।

बचपन

लड़खड़ा कर चलता मेरा बचपन
मेरी आँखों के सामने से गुजर गया
उसमें सपने थे
कच्ची मिट्टी के
उपवन व बारिश के
उसमें बसा था कहीं
अपनों से प्यार
परायों से रिश्ता
समय का क्रूर अट्टहास
अन्तस्तल की गहराइयों पर गिरा
बचपन पंगु हो गया
संवेदनहीन हो गया
उसे अब
हँसना उछलना खेलना कूदना
फिर से सीखना होगा
शहर में कोई
बंदरिया का नाच नहीं दिखाता
अपनी उंगलियों पर कोई
कठपुतली नहीं नचाता
नौटंकी वाला भी यहाँ
डुगडुगी नहीं बजाता
फिर भी मेरा बचपन
रोता है सिसकता है घुटन में
साँस लेने की
कोशिश करता है
फुटपाथ या बालकनी में जीता है
मोती पिरोता
फूल चुनता और वेणी बनाता है
असहाय हो कर भी

चुपके से मुस्कुराता है
और जब वह मुस्कुराता है
मैं
जिंदगी के बोझ में दबकर
मरने को तैयार
फिर से जी उठता हूँ ।

आवाज दर आवाज

आवाज जाती है
दूर तक जाती है
जैसे किसी को बुला रही हो
आसमान से टकराती है और
प्रतिध्वनि बन लौट आती है
क्या आसमान में भी
घरौंदे होते हैं
धरती पर शब्द नहीं चलते
भावनायें नहीं चलती
रिश्ते भी
अब चलने बंद हो गए हैं
यहाँ चलता है पैसा
इसीलिए मेरी आवाज
धरती पर
अपने किसी प्रश्न का
उत्तर नहीं ढूँढ पाती
पैसा जो खुद बिकता है
खरीदता है उठता और गिरता है
भला इंसान को क्या देगा
आज इंसान
इंसान से
बस पैसा माँगता, बाँटता या लूटता
नजर आता है ।
ऐसे में शब्द शब्द नहीं हैं
बस
दस्तूर में चल रही किसी फाइल की तरह
इधर उधर हवा में टहलते
बेमतलब की औपचारिकता मात्र हैं ।
इन शब्दों में

न करुणा है न कल्पना
न भावना न स्नेह
इसलिए हमारे गले से
आवाज नहीं निकलती
बस
मुँह से बात निकलती है
जिसमें
न अपेक्षा है न उपेक्षा
न आत्मीयता न प्रगाढ़ता
बस
कुल मिलाकर
एक शून्यता. है वह शून्यता जो
धीरे धीरे रिक्तता का
पर्याय बन गयी है
बिल्कुल हमारे हृदय की तरह
इसीलिए मेरी आवाज
बर्फीली चोटियों से टकराती है
रेगिस्तान तक जाती है
आसमान में घर बनाती है
कि
शायद वहाँ सभ्यता का जाल न फैला हो
और टूटी फूटी ही सही
कोई निश्चल आवाज ढूँढ सके ।

मासूमियत

मेरा प्रेरणा स्रोत
किसी नायिका के
आस पास नहीं टिकता
ऐसा लगता है
मेरे भीतर विद्यमान
सौंदर्य अनुभूति के तंतु
सुप्त हो गये हैं
मैं खंगालता हू अपने भीतर ,छुपी
इंसानियत को
और नंगा हो जाता हूँ
इंसानियत के इस
कपड़े उतारने की प्रकिया में
मिलती है मुझे एक पंक्ति
फिर
मैं प्रश्न पूछता हूँ समाज से
ऐसा क्यों हुआ
और लिखता हूँ
दूसरी पंक्ति
कभी कभी मुझे
किसी हत्यारे की खोज होती है
एक ऐसे हत्यारे की
जो चौराहे पर
नंगा करता है इंसानियत को
मैं उससे कहना चाहता हूँ
तुम इसे तिल तिल कर

क्यों मार रहे हो
सीधे जनता के सामने खड़ा कर इसे
एक ही बार में
गोली क्यों नहीं मार देते
वह मेरे भोलेपन पर
ठठा कर हँसता है
मुझे अपनी मासूमियत पर तरस आता है
उसका अट्‌टहास गूँजने लगता है
और मुझे अपनी कविता
समाप्त होती दिखाई देती है ।

कुछ

जब कुछ नहीं होता
तो
कुछ होता है
क्या निःशब्दता सन्नाटा है ?
जब कुछ नहीं होता तो
निःशब्दता होती है
या सब कुछ हो चुका हो
तो, निःशब्दता होती है
पहली निःशब्दता में जिज्ञासा होती है
और दूसरी उससे परे
तो
दूसरी निःशब्दता में क्या होता है
कुछ नहीं
जब कुछ नहीं होता
तो कुछ होता है
यह कुछ वही है जो
दे गया
निःशब्दता ।

साँस

मुझसे दूर बहुत दूर
है कहीं जिंदगी का बसेरा
खुले आसमान के नीचे
घनी छाँव चाहिए
उसे महसूस करने के लिए ।
आँसू हैं उसकी पलकों पर
देखने के लिए
दिल चाहिए शीशे सा
छूने के लिए
मोम से हाथ
उठाने के लिए
मखमल से कोमल भावना ।
साथ ले चलने के लिए
राजपथ पर दौड़ती
बैलगाड़ी चाहिए
और छुपाकर रखने के लिए
रत्नमंजूषा
कि मुझसे दूर बहुत दूर
जिंदगी का बसेरा है
वह उदास है बहुत उदास
जैसे सर्द जाड़े में
छुपी हुई धूप
उसके मुझ तक आने और जाने में
जो बहती है हवा
वह साँस है ।

दावा

वह शख्स
जिसके बारे में
मैं
सबसे कम जानता हूँ
मैं हूँ
और
जिसके बारे में
सब कुछ जानता हूँ
वह भी
मैं हूँ
मैं इस मैं के बारे में
नहीं जानता
जो
सब कुछ जानने के बाद भी
कुछ नहीं जानता
फिर भी
सब कुछ जानने का
दावा करता है ।

समर्पण

हे देव
किसे अर्पित करूँ
रक्तिम क्यारी की
प्रथम फसल का
प्रथम पुष्प
यह श्रद्धा सुमन नहीं
प्रणय कुसुम, नहीं
यह रक्तिम क्यारी का प्रथम पुष्प
क्या है ?
शायद मानवता की खोज में
जन्मा शिशु
बता दो मुझे योग्य पात्र
तुम तो सर्वज्ञ हो
देखना
कहीं प्रश्न चिन्ह न लगे ।

मनुष्य

तुम कर्ता नहीं
निमित्त हो
भोक्ता नहीं
भोग्य
हविष्य समय के
दृष्टा प्रयोग व परिणाम के
शाक्ति के गुलाम
और शाक्ति के ही उपासक
साधना में लगाकर जीवन
शंकर बनने चले
भूल गए
देव तो स्वयं
मनुष्यता के अभिलाषी हैं
चिंतन करो
कि तुम मनुष्य हो ।

परिहास

व्यंग्य
कहता हूँ लिखता हूँ सुनता हूँ ।
कभी कभी
स्वयं व्यंग्य होता हूँ
सोचता हूँ
व्यंग्य आया कहाँ से
तो लगता है
जिंदगी और व्यंग्य में
अंतर नहीं है
क्या अपनी सरलता को
निरंतर छले जाते देखना
किसी परिहास से कम है ।

अस्तित्व

चलो
मैंने माना
तुम वह नहीं हो
जो मैं सोचता हूँ
तुम वह भी नहीं
जिसे चाहता हूँ
फिर भी
तुम कुछ हो
तुम हो
तुम्हारा यह होना ही
उतना सब कुछ नहीं
जो बार बार कहने के बाद भी
मैं नहीं कह पाता
क्या फर्क पड़ता है
जो सोचता हूँ चाहता हूँ
तुम्हरा न होना
मेरे अस्तित्व से जुड़ा है
तुम्हारे नहीं ।

तलाक

विवाह के उपरांत
संगम की खोज
गंगा यमुना की धारा की भाँति
हम साथ साथ तो चले
किंतु मिल न सके
तुम धवल गंगा सी
अलग चमकती रही
मैं कालिंदी सा मलिन
खोया रहा ।
अब स्वतंत्रता की खोज में
तुम अलग राह ढूंढ रही हो
और मैं
अतीत से लड़ रहा हूँ
अस्तित्व की रक्षा में
नदी के जल से सींचे उपवन में
मासूम फूल से खिले बच्चे
बिना किसी अपराध के
दुर्भाग्य का
शिकार हो गए
यही तो अर्थ है
तलाक का ।

पागल प्रेमी

मैं कहूँ
मेरी रात
आंखों में खो जाती है
तुम कहोगी
हर प्रेमी के साथ
ऐसा होता है
जो कहूँ
चाहत का तड़प का
अहसास होता है
तो कहोगी
इस दौर में ऐसा ही होता है
मेरे हर कार्य की
परिभाषा जो ठहरी
तुम्हारे पास
रहने दो
मुझे नहीं बनना प्रेमी
जो परिभाषा में बँध गया
कम से कम
वह मेरा प्यार नहीं ।

पिंजरे के पंछी

किंकर्तव्यविमूढ़
आस्थाहीन
संवेदनहीन
दिशाहीन
पंख की चाह
अंतरिक्ष विजेता बनने का स्वप्न
दलदल में फँसे पैर
बाहर कब आए
पिंजरे के पंछी ।

जीवन चक्र

कर्ण का जीवन चक्र
बंधन के दलदल में
अर्जुन तीर चलाओ
वह सूत पुत्र है
ईमानदारी से
जीता न जा सकेगा
उसे जीने का अधिकार कैसा
अधर्म के खेमे में है !
हे माधव
तुम सर्वज्ञ हो
क्या कर्ण ने भी युद्ध
छल से लड़ा है ।

सत्य जीतता है

सत्यमेव जयते
कोई व्यंग्य है शायद
जो हर जगह लाचार खड़ा दिखाई देता है
जब
प्रगति होती है
हारता है सत्य
जमीन बँटती है तो
हारता है सत्य
गोली चलती है तो
हारता है सत्य
सत्य हारता है जब
राजघाट पर टूटती है समाधि
कभी कभी लगता है
सत्य
चुल्लू भर पानी में
मुँह छुपाता फिरता है
तो क्या सत्य हमेशा हारता है
नहीं
सत्य जीतता है जब
लाठी किसी बेसहारा के हाथ में
दिखाई देती है
जीतता है सत्य जब
कोई बड़ा डॉक्टर फीस की परवाह छोड़
मरते हुए गरीब को बचाता है
जब थाने में किसी अस्मत लुटी महिला को
कोई पुलिसवाला वर्दी पहनाता है
और
बिखर चुके समाज में
दंगों के रक्तपात में

कोई मुसलमान किसी हिन्दू के बच्चे को
बचाता है
जीतता है सत्य
जब
मंदिर का पुजारी
किसी अछूत को टीका लगाता है
सबसे बढ़कर
सत्य जीतता है तब
जब भीड़ भरे चौराहे पर
शंखनाद कर
कोई
हमारी सोई हुई अंतरात्मा को जगाता है
हमारी सोई हुई..........।

आस

मेरे आस का पंछी
तुम्हारे घर की मुंडेर से उड़ता है
तुम चलो न चलो
तुम्हें ले लेता है
अपने साथ
उड़ना चाहता है
दूर बहुत दूर
नील गगन की छाँव में
लेकिन फिर
घूम फिर कर कैद हो जाता है
तुम्हारे घर की चारदीवारी में
कमजोर हैं इसके डैने
बहुत फड़फड़ाते हैं
दीवारों से टकराते हैं
निराशा से दूर बहुत दूर
अभी बची है उसमें आस
नील गगन में उड़ने की ।

शून्य

भावना एक शून्य है
शून्य को देखने का
अपना अपना दृष्टिकोण है
गणितीय साहित्यिक व सामाजिक शून्य हैं
किन्तु भिन्न भिन्न
शून्य एक उपलब्धि है
खोज है या नहीं
पता नहीं
शून्य मात्र खालीपन नहीं है
कभी कभी खालीपन भरा जाता है शून्य से
भावना एक शून्य है
कभी कभी
ह्रदय का खाली पन भरा जाता है भावना से
शून्य अस्तित्व बोध है
कुछ न होने और शून्य होने में
अंतर है
उपलब्धि शून्य का कोई परिणाम है
परिणाम प्रयोग से आता है
टपकता नहीं
भावना एक शून्य है
कभी कभी ह्रदय का खाली पन
भरा जाता है शून्य से ।

चुनौती

तुम
भगवान हो
तुम्हें कुछ भी करने की छूट है
हम इंसान हैं
हमें वह सब कुछ सहना ही है
जो तुम करो
तुम इंसान होते और हम भगवान
तो कम से कम
हम वह न करते
जो तुम
बहुत आसानी से कर देते हो
यह तुम्हारी दुनिया है
जिसमें
अकाल मौत है
बाढ़ की विभीषिका है
भूस्खलन का तांडव है
प्रकृति की मनोरम गोद है
तो विषैले जीवजन्तु और काँटे भी
तुम शायद
काँटों पर सोना नहीं जानते
नहीं जानते तुम
रोटी के लिए चोरी करना और तन बेचना
तुम इंसान के जिंदा रहने के लिए
टूटती मर्यादाओं को
नहीं जानते
हाँ
तुम हो
रक्षक अविनाशी दुखहन्ता कृपालु
जो भी करते हो

कृतज्ञता स्वरूप

सब कुछ रखकर
दान देना बहुत आसान है
अपना घर चलाने के लिए
गुर्दा आँख या खून देने वालों से पूछो
दान क्या होता है
क्या कर्ण इनसे बड़ा दानी था
क्या इंसान के जिंदा रहने की कीमत
इतनी बड़ी है
तुम्हारे सर्वव्यापी होने का भ्रम झूठा है
कभी कभी
तुम्हारे मूर्ती की कीमत
आदमी की कीमत से
अधिक होती है ।
इतना सब कुछ रखकर
भगवान होना बड़ी बात नहीं
वर्तमान युग की विषम परिस्तिथियों में
इंसान बने रहना
एक चुनौती है !

दर्द का बँटवारा

दर्द संभालता हूँ
दर्द सहेजता हूँ
दर्द खरीदता हूँ
और दर्द ही बेचता हूँ
मैं कोई सपनों का सौदागर तो हूँ नहीं
जो किसी
झूठी दुनिया की सैर कराऊँ
दर्द ही वह सत्य है जो
अमीर से गरीब
और छोटे से बड़े तक
साम्यवादी ढंग से फैला है
मैं फुटपाथ पर सोते बच्चे
अस्पताल में बिलखते रोगी
और आत्महत्या करते किसान से
दर्द खरीद लेता हूँ
कभी कभी
उस इंसान से भीख में माँग लेता हूँ
जो किसी से नहीं कह पाता अपना दर्द
फिर इस दर्द को कीमती दवा बना
खूबसूरती से पैक कर
बेच देता हूँ उन्हें
जो क्लबों में जुएखाने में
शराबखाने और लक्ज़री कार में
झूठा दर्द भागते हैं
अपनी अय्याशी के नीचे
आत्मा के दर्द का
अहसास झेलते हैं
हाँ
इस दर्द के बँटवारे में

कुछ हिस्सा मैं
अपने लिए भी बचा लेता हूँ
कि
कहीं मैं
झूठ न बोलने लगूँ
और इमानदारी से चलती रहे अपनी जिंदगी
थोड़े से
अपने असली दर्द के साथ ।

गुलाम

ऐ मेरी गुजरी हुई जिंदगी के लम्हो
तुम्हारे पास क्या है
चंद अफसाने
कुछ कहे कुछ अनकहे फसाने
मेरे भविष्य
क्या समेंट रखा है तुमने
अपने गर्भ के भीतर
अथाह दर्द का सागर
या
आनेवाली खुशी का कोई क्षण
नहीं तुम इंसान को
झूठी तस्वीर दिखाते हो
तुम्हारे पास कुछ है नहीं
बस व्यंग्य से मुस्कराते हो
तुम जो हो
वह दिखते नहीं
और
जो दिखते हो
वह हो नहीं
दोनों में से
कुछ नहीं है मेरे पास
मेरे पास तो बस
मेरा वर्तमान है
जो सच बोलता है
खरा सच
और कहता है
तुम कुछ नहीं हो
हाँ इंसान भी नहीं
तुम हालात की चक्की में पिसे
गुलाम हो
जो बस
सपने बुनने का आदी है ।

तूफान

हृदय के झंझावात
भीड़ में और जोर से चलते हैं
एक एक परिचित को
गौर से देखते हैं
स्वयं को नितांत
अपरिचित पाते है
संबंधों की परिभाषा का तूफान
परिचय को
भावना के धरातल से
धूल की तरह
उड़ा ले जाता है
हम खड़े रह जाते हैं
हर तूफान में
भीड़
आती और चली जाती है ।

मैं अकेला

तुमने मुझे समझा
और समझते चले गए
धीरे धीरे
बँटने लगा
अकेलापन
फिर तुम
मुझे समझ गए
देखते देखते
मैं अकेला हो गया ।

गुनाहगार

ठक ठक ठक
कौन
क्या मैं अंदर आ सकता हूँ
..........सन्नाटा...........
कुछ सुन रहे हो
हाँ
क्या
दस्तक
तो दरवाजा क्यों नहीं खोलते
तुम आओगे
हाँ
सचमुच
हाँ भाई हाँ
आकर क्या करोगे
भीतर आने दो
तुम बाहर ठीक हो
तुम मुझे जानते हो तो भीतर क्यों नहीं आने देते
तुम आओगे तो मेरा विश्लेषण करोगे
और मैं
अपने ही दृष्टिकोण में
गुनाहगार हो जाँऊगा ।

सभ्यता की चादर

ओस की चादर
आसमान को ढकती है
धीरे धीरे नीचे उतर
फुटपाथ पर बिछ जाती है
फुटपाथ पर सोते हैं कुछ लोग
उनका अस्पताल फुटपाथ है
उनकी पाठशाला फुटपाथ
क्रीड़ांगण से मधुशाला तक
सब फुटपाथ
बचपन से बुढ़ापा तक
बीतता है लैम्पपोस्ट के नीचे
हर साल
ठंड में
वही ओस की चादर
उन्हें अहसास कराती है
शमशान के भी
फुटपाथ पर होने का
ओस की चादर
उपवन में फूलों पर गिरती है
घास पर गिरती है
और गिरती है
अनचाहे ही
फुटपाथ पर सोते आदमी पर
लावारिस आदमी
सभ्य आदमियों को बहुत चोट पहुंचाते हैं
ओस की चादर
सभ्यता की रक्षा करते करते
दिन निकलने तक
शून्य में
खो जाती है ।

समझदार आदमी

सपने बुनते हैं
मकड़ी के जाले की तरह
उसमें सब उलझते जाते हैं
और हम अकेले
हकीकत की तरह
जाले पर चलते रहते हैं
जो सपनों में कैद होते हैं
जैसे हमारे हो सकने के समीकरण
या फिर
अभिलाषाओं के इन्द्रधनुष
हमारे ही द्वारा
धीरे धीरे कर
उदर पोषण के बहाने
खा लिए जाते हैं
एक दिन
सपनो का जाल
गंदगी बन जाता है
जो
हमारे ही भीतर पैदा हुए
समझदार आदमी द्वारा
झाड़ पोंछ कर
साफ कर दिया जाता है ।

शोर

हम सब चुप हैं
पत्थर बोलते हैं
खंडहर बोलते हैं
जीव जंतु और चराचर बोलते हैं
नीलाकाश की ऊँचाई
और समुद्र की अथाह गहराई बोलती है
प्रकृति बोलती है
और बोलती है
पहाड़ों से कल कल कर उतरती है
नदी
हम सुनते हैं
ब्रह्मनाद
अनंत का संगीत
सीखते हैं
लयबद्धता, सरसता, सरलता
सुर, ताल, छंद
और जब हम बोलते हैं तो
सब खो जाता है
भाव–रूप सौहार्द माधुर्य
बस उपजता है ऐक
शोर
अपने आस पास ।

उमंग

उसके भीतर
उमंग
पैदा होना चाहती है
उमंग देखती है
ढलती हुई रात
भोर शंखनाद
और नदी की
अविराम कलकल
वह देखता है
ढलती हुई साँझ
फैलती कालिमा
डूबते तारे और
बिलखती मानवता
वह चुपके से
शरीर छोड़ जाना चाहता है
वह चला जाता
समझ लो चला ही गया
कि
उसने अपने शांत सोते बच्चे को देखा
देखा उसने
चिड़िया के घोंसले में
अंडों को फूटते
चहचहाकर अपना अस्तित्व बोध कराते
नवजात पक्षियों को
उसके पाँव ठिठके वह रुका
उमंग पैदा हो गई !

सफलता

मैं
अपने आस–पास
असफल हूँ
संस्कार की जंजीरें
कसती हैं पाँव
सहते रहे
वह सब कुछ
जो हमें
स्पंदनहीन बनाता गया
संस्कार
मिट्टी फोड़कर
अंकुरित हुए
हमें आस–पास
मानसिक शांति की छाँव
दिखायी देती है
लगता है
दूर बहुत दूर
सफलता खड़ी है
मैं उधर जा रहा हूँ ।

संधि

समझौतों की आड़ में
गठबंधन
कौन कहाँ किस जगह
ठीक है
हिस्सों नहीं
टुकड़ों में बँटी जिंदगी
मानसिक संधि
हृदय के साथ ।
जो दर्पण में दिखायी देता है
ढाँचा
हमारा ही शरीर
किसी परायेपन का
एहसास लिये
हमें मजबूर करता हुआ
अपना कहने को
जोड़ तोड़ से बनी संधियों ने ही
बुना है ताना बाना
अपने अस्तित्व का
उसे सिद्ध करने में
जो कटता है समय
वह उम्र है
संधि और विलय के अंतर
समाप्त हो गए ।

प्रतीक्षा

परदा हिलता है
जैसे पत्ते खड़कते हैं
आवाज होती है
जैसे हवा चल रही हो
होता कुछ नहीं
बस होता हुआ महसूस होता है
सुबह से शाम तक
घर
किसी की प्रतीक्षा करता है
कोई कहीं
जाता है न आता
सुबह से शाम तक
बस स्थान बदलता है
वह कदमों से उम्र से पड़ाव से
चल कर रुका रहता है
कार दौड़ती है
रेलगाड़ी जाती है
प्लेन उड़ता है
आदमी स्थान बदलता है
घर
पूरी उम्र
उसके लौटने की प्रतीक्षा करता है
उसे अभी भी भ्रम है
शरीर के भीतर
आदमी के जिंदा रहने का ।

मँहगाई

हमारे
चरित्र
नैतिकता
ईमानदारी
व
देश–भक्ति में
इतना पतन आ गया है
कि
मँहगाई बढ़ गई है ।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

इस युग में
अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
यह दो हजार वर्ष की गुलामी के बाद का
प्रजातंत्र है
कोई और संस्कृति होती
तो सांस लेना भूल जाती
वह तो हमारा बूता है कि
ढांचा गलने के बाद
पिंजरे में कैद आत्मा
बाहर आ गई
परिभाषा
शीतल मंद सुगंध बयार की
कौन बताएगा
गुलामी का असर
जाते जाते जाएगा
अभिव्यक्ति
किसी ओढ़ी हुई सभ्यता की
सत्यप्रतिलिपि तो है नहीं
कहां से जन्म लेगा
मौलिक चिंतन?
चिंतन पर तर्क है
भावना पर नहीं
आत्मा जीवित है
स्वतंत्रता स्वतः खोज लेगी
मौलिकता ।

प्रगति

जंगल में
शिलान्यास हेतु
पत्थर रखा गया
पच्चीस वर्षों में
कंक्रीटी सभ्यता ने
पाँव पसार दिए
तुम्हारे आने और जाने के बीच
स्मृतियाँ रह गई
शरीर तो बूढ़ा हो गया
किन्तु आत्मा
प्रगति की मिसाल बन गई
अब मुझे
पत्थरों के गाने की आवाज सुनाई देती है
हाँ
आदमी का हृदय
मशीन हो गया है
जो
हर गलत सही बात पर
बस
ऊपर नीचे
सिर हिलाता है ।

रचना और प्रकाशक

मैं
एक एक रचना को
हृदय में
धीरे धीरे सेता हूँ
असीम पीड़ा के साथ
जन्म देता हूँ
पालता पोसता और बड़ा करता हूँ
बड़े ही स्नेह से उसे
सुन्दर बना
भेज देता हूँ
प्रकाशक
निर्ममता से
लिफाफा खोलता है
पन्ने फाड़ता है
रचना के साथ बलात्कार कर
कूड़े की टोकरी में
फेंक देता है ।

मौत के आसपास हूँ मैं

मौत के आसपास हूँ मैं
सन्नाटे में हूँ
खामोशी में हूँ
तुम्हारे होने में नहीं
न होने में हूँ
कुछ कहने में नहीं हूँ
सुनने में नहीं हूँ
कुछ करने में हूँ
कर सकने में नहीं हूँ ।
निराशा में हूँ
अवसाद में हूँ
भय में हूँ
आदमी में नहीं हूँ
संज्ञा शून्यता में हूँ
कोलाहल में हूँ
तनाव में हूँ
कठोरता व द्वन्द्व में हूँ
नीरवता में नहीं हूँ ।
फैसला होने में हूँ
फांसी में हूँ फंदे में हूँ
फैसला लेने में नहीं हूँ
मुजरिम नहीं हूँ
गुनाहगार नहीं हूँ
फिर भी उलझन में हूँ
तूफान में हूँ
ठहराव में हूँ
पागलपन में हूँ
दर्द में हूँ आह में हूँ
चोट में हूँ टीस में हूँ

जिंदगी में नहीं हूँ ।
सनक में हूँ सुरूर में हूँ
नशे में हूँ अनिद्रा में हूँ
नींद में नहीं हूँ .
सच्चाई में हूँ
सच्चाई पर नहीं हूँ
अपने होने में हूँ.....नहीं हूँ
शरीर में हूं.......नहीं हूँ ।
अपनेआप में नहीं हूँ
अस्तित्व में नहीं हूँ
अपने रहने उठने बैठने में नहीं हूँ ।
अपने रोने में हूँ
तड़पने में हूँ
अपने पिंजरे में हूँ
धुंध में हूँ धुंए में हूँ
कोहरे में हूँ अंधरे में हूँ
परछाई में हूँ
मिटने में हूं
खत्म होने में हूँ
मौत की प्रतीक्षा में हूँ
कफन में हूँ टिकटी पर हूँ
कांधे पर उठाए जाने वाली
काठी में हूँ
वो चिता से निकलती
दावानल की लपटों में हूँ
बचालो मुझे 'मानवता'
मौत के आसपास हूँ मैं,
मौत के आसपास हूँ मैं ।

नदी बहती रही

रूठने मनाने में
जो बीत रहा था जीवन
वह और कुछ नहीं बस
हृदय की सुवास था
आज तुम नहीं हो
तो लगता है
कहीं सब कुछ शांत चलता रहता
लहर विहीन
तो पोखर के जल सा स्थिर जीवन
समय से पूर्व ही थम कर
अस्तित्वहीन हो जाता
कि लहर के आने जाने ने
हृदय के उच्छावासों को
गगन छूने की
ऊँचाई दी है ।
तुम बहती रही नदी सी
और मैं
निहारता चला गया ।

स्वतंत्रता

स्वतंत्रता
वह नहीं है
जो हमें मिली है ।
स्वतंत्रता वह भी नहीं है
जो दिखाई देती है
स्वतंत्रता वह है
जो हम महसूस करते हैं
और तब मुझे लगता है
मैं गुलाम हूँ ।

स्मृति के तट

तुम पार हो
भावना सरिता के उस पार
मैं भ्रम में हूँ
न इस पार न उस पार
कि
नदी चलती है बहती नहीं
सीढ़ी दर सीढ़ी
मेरे हृदय में बने पक्के घाट
उसपर नहाती हुई तुम
तुम्हें खींच कर
सीने से लगा लूँ
नदी बह चले
तुम आती हो बादलों में चलकर
चमकती हो मेरे सीने में
छुप जाती हो ।
काश ! कि तुम ठहरती
वह हुलसती हुई आस
ओस के बूँद सी
पत्तों पर थम जाती है
तुम जाती हो
जैसे साँस आ और जा रही हो
मैं इन साँसों के रुकने से
मर जाता
तुम्हारा आँचल
बस साध है
कि तुम्हारा होना
अभी मेरे होने से पहले कहाँ था
हाँ तुम्हारा होना
मेरे होने के बाद है

अब मेरा होना या न होना
मेरे रहने की पहचान
नहीं रहा ।

शहर

धूप
छाँव
हँसी
सब बनावटी
रिश्ता
पैसा
त्याग
सब दिखावटी
लोहे और
पत्थर से बने
घर का नाम
पंचवटी ।

गाँव

मिट्टी
धूल
अभाव की
सुगंध
रिश्तो में
मिठास की गंध
खुले खेत खलिहान में
तपते धूप की
प्यार भरी छाँव
संताप व पीड़ा के बाद भी
बहुत सुहाना है
मेरा गाँव ।

टूट

भीतर
जगह जगह सिला हुआ
कहीं कहीं
मसाले से जुड़ा हुआ
बाहर
दिखाई देता एक आदमी
आइने में मुझे
अपनी टूट का
अहसास दिलाता है ।

हे प्रभु

हे प्रभु
मुझे इतनी शक्ति देना
कि सच बोल सकूं
इतनी क्षमता देना
कि बिना सहारे के दौड़ सकूं
इतना साहस देना
कि अन्याय का विरोध कर सकूं
वह विवेक देना
कि नीर क्षीर अलग कर सकूं
सद्बुद्धि देना प्रभु कि
मानव मानव में
जाति सम्प्रदाय व धर्म के नाम पर
भेद न करूं
इतना आत्म बल देना
कि
विपरीत परिस्थितियों में भी
सत्य को सत्य कह सकूं
आज बदलते परिवेश में भी
मैं हे प्रभु
जीवन को अपने भीतर
संचरित होते
महसूस करना चाहता हूँ ।

प्रगति की रेल

आसमान बहुत छोटा है
यदि उपग्रह
इसे भेद कर
इसी तरह जाते रहे
तुम्हरा स्वार्थी हो जाना
और मुझे भेद देना
वैसा ही लगता है जैसे
ओजोन परत में
ब्लैक होल ।
आसमान का विस्तार बहुत छोटा है
और साथ साथ चलने वाली
समांतर रेल की पटरियों का फासला
बहुत अधिक
इन्द्रधनुष आसमान पर निकलता है
और कभी कभी
उसके बड़े लेकिन एक होने का
एहसास करा देता है ।
रेल की पटरी पर
कभी इन्द्रधनुष नहीं उगता
उस पर चलती है रेल
मशीनी रेल
खटपट खटर पटर......
जो अपने बीच
किसी भी चीज को
पीस देती है
चाहे वह
हृदय ही क्यों न हो
गुजर रही है प्रगति की रेल
और पटरी पर रखा है
मेरा हृदय ।

नियति

बेचैनी
खामोशी
रिक्तता युक्त मस्तिष्क
कुछ न कहते हुए भी
संपूर्ण व्यक्तित्व को
व्यक्त करती आंखें
सोया हुआ सब्र
परिस्थितियों से जूझता
समय से पराजित
मानव
कर्तव्यबोध नैतिकता
और स्वतंत्रता की
चिर अभिलाषा
उलझा हुआ जीवन ।
मुक्ति की आकांक्षा
हृदय में संजोये
बीते हुए कल को सोचता
आज को खोता
भविष्य में डूबा
किंकर्तव्यविमूढ़ हृदय ।
सबके सामजस्य की
विचारधारा
मानव को झकझोरता युग
विकास का काल्पनिक पथ
वास्तविकता से दुराव
अस्तित्वहीन सभ्यता
और इसमें मुंह छुपाती धरा
क्या यही आज की
नियति है ?